पञ्चाक्षरमन्त्र के माहात्म्य की कथा

श्रीमहादेवजी देवी पार्वतीजी से कहते हैं कि पञ्चाक्षरमन्त्र का पूरा माहात्म्य करोड़ों वर्षों में भी कोई नहीं कह सकता। परन्तु संक्षेप से हम उसे सुनाते हैं। प्रलयकाल में स्थावर, जंगम, देव, असुर और नाग इत्यादि नष्ट हो जाते हैं। तुम भी प्रकृति के रूप में लीन हो जाती हो। तब हम एकाकी रहते हैं, कोई दूसरा अवशिष्ट नहीं रहता। उस समय वेद और शास्त्र हमारी शक्ति द्वारा पालन किये हुए पञ्चाक्षरमन्त्र में निवास करते हैं। फिर जब हम दो रूप धारण करते हैं तब हमारी प्रकृति ही मायामय शरीर धारण कर नारायणरूप से समुद्र में शयन करती है। उसके नाभि-कमल से पञ्चमुख* ब्रह्मा उत्पन्न हो सृष्टि करने की सामर्थ्य के लिये प्रार्थना करते हैं। एक बार ब्रह्माजी की प्रार्थना सुन उनके हित के लिये मैंने पाँच मुखों से पाँच अक्षरों का उच्चारण किया। उन वर्णों को ब्रह्माजी ने पाँच मुखों से ग्रहण किया और वाच्य-वाचक-भाव के द्वारा परमेश्वर को जाना। उन पाँच अक्षरों के त्रैलोक्य-पूजित शिवजी वाच्य हैं। यह पञ्चाक्षरमन्त्र शिव का वाचक हैं। ब्रह्माजी ने इस पञ्चाक्षरमन्त्र का विधिपूर्वक दीर्घ कालतक जप कर सिद्धि प्राप्त की और तदनन्तर भगवान् शिवजी को प्रसन्न करने के लिये मेरु-पर्वत के मूजवान् शिखर पर दिव्य एक हजार वर्षोंतक तप किया। उनकी दृढ़ भक्ति देख भगवान् शिव ने प्रत्यक्ष दर्शन देकर लोकहित के लिये पञ्चाक्षरमन्त्र के ऋषि, छन्द, देवता, शक्ति, बीज, षडङ्गन्यास, दिग्बन्ध और विनियोग का उपदेश किया।

ऋषिगण भी इस मन्त्र का माहात्म्य जानकर अनुष्ठान करने लगे, क्योंकि उसी के प्रभाव से देवता, मनुष्य, असुर, चार वर्णों के धर्मादि, वेद, ऋषि तथा शाश्वत धर्म और यह जगत् स्थित हैं।

पञ्चाक्षरमन्त्र अल्पाक्षर है। इसमें अनेक अर्थ भरे हैं। वेद का सार, मुक्ति का देनेवाला, असन्दिग्ध, अनेक सिद्धि देनेवाला, सुख से उच्चारण करने योग्य, समस्त कामनाओं को पूर्ण करनेवाला, सब विद्याओं का बीज, सब मन्त्रों में आदि, वट-बीज की भाँति बहुत विस्तारयुक्त और परमेश्वर का वाच्य पञ्चाक्षर ही है। इसके आदि में प्रणव लगा देने से यह षडक्षर हो जाता है।

पञ्चाक्षर तथा षडक्षर-मन्त्र में वाच्य-वाचक-भाव के द्वारा शिव स्थित हैं। शिव वाच्य हैं और मन्त्र वाचक है, यह वाच्य-वाचक-भाव अनादिसिद्ध है। जिस पुरुष के हृदय में पञ्चाक्षरमन्त्र विद्यमान है; उसने मानो सब शास्त्र और वेद पढ़ लिये, क्योंकि शिव ही ज्ञान हैं, वही परमपद हैं। इसलिये नित्य पञ्चाक्षरमन्त्र का जप करना चाहिये। पञ्चाक्षर भगवान् शिवजी का हृदय, गुह्य से गुह्य और मोक्षज्ञान का सबसे उत्तम साधन है।

---

* प्रारम्भ में ब्रह्माजी के पाँच मुख थे। कालान्तर में झूठ बोलने के कारण ब्रह्माजी के एक सिर को शिवजी ने काट डाला था। तब से ब्रह्माजी चतुरानन कहलाने लगे।

प्राचीन समय में एक बार बड़े तेजस्वी वत्स नामक मुनि भ्रमण करते हुए सूतजी के आश्रम में पहुँचे। सूतजी ने भक्ति से प्रणाम करके पाद्य, अर्घ्य आदि देकर मुनि की पूजा की और कुशलप्रश्न के अनन्तर सूतजी की प्रार्थना से चातुर्मास-व्रत का अनुष्ठान करने के लिये वत्समुनि उनके यहाँ ठहर गये। सूतजी विनयपूर्वक उनकी सेवा करने लगे। महर्षि वत्स दैनिक कार्य से निवृत्त होकर रात्रि के समय अवकाश मिलने पर सूतजी को विचित्र कथाएँ सुनाया करते थे।

एक समय कथा के अन्त में सूतजी ने विस्मित होकर महर्षि वत्सजी से पूछा कि 'हे भगवन्! आपका यह शरीर इतना सुकुमार है और आप अनेक विचित्र कथाएँ कहते हैं। हे तात! मुझे यह बतलाइये कि इतनी छोटी अवस्था में आप ने ये घटनाएँ कैसे देखीं? हे मुनीश्वर! यह आपकी तपस्या का प्रभाव है अथवा किसी मन्त्र का फल है?'

वत्समुनि हँसकर बोले-'हे सूतजी! तुमने बहुत ठीक पूछा। यह मन्त्र का ही प्रभाव है। मैं प्रतिदिन शिवजी के समीप उनके षडक्षर मन्त्र का आठ हजार जप किया करता हूँ। इसी के प्रभाव से मेरी युवावस्था तीनों काल में एक-सी रहती है और मुझे सदैव भूत-भविष्य का ज्ञान बना रहता है। मेरा जन्म हुए हजारों वर्ष हो गये। हे महामते! सदाशिवजी की प्रसन्नता से मैंने जिस-प्रकार सिद्धि प्राप्त की है, इसका वृत्तान्त मैं विस्तार से तुम्हें सुनाता हूँ।

एक बार वनों में भ्रमण करते-करते मैं महर्षि देवरात के आश्रम पर पहुँचा। ऋषि के मृगावती नाम की एक रूप-गुण-सम्पन्ना कन्या थी, उन्होंने शुभ मुहूर्त में बड़ी प्रसन्नता से मेरे साथ अपनी कन्या का विवाह कर दिया। मैं मृगावती के साथ आनन्द से रहने लगा। परन्तु मेरे भाग्य में यह आनन्द अधिक काल के लिये नहीं बदा था।

एक दिन मृगावती अपनी सहेलियों के साथ वन में विचरण करने गयी। घूमते-घूमते उसका पैर घास-फूस से ढके एक भयङ्कर नाग के सिर पर पड़ गया। सर्प ने क्रोध में आकर मृगावती को काट लिया और वह तत्काल मर गयी।

सखियों ने आकर यह दारुण वृत्तान्त मुझे सुनाया। मैं यह दुःखद वृत्तान्त सुनते ही हाहाकार करता घटना-स्थल पर जा पहुँचा और अपनी प्राणप्रिया को निर्जीव देख छाती पीट-पीट कर विलाप करने और करुणस्वर से रोने लगा।

इस प्रकार हृदय-विदारक विलाप करते-करते दुःखी होकर मैंने चिता बनायी। मृगावती के शरीर को उस पर रखकर आग लगा दी और स्वयं भी उस चिता पर चढ़ने लगा। इतने में ही मेरे कुछ मित्र इस दारुण वृत्तान्त को सुनकर वहाँ पहुँच गये और उन्होंने मुझको समझा-बुझाकर आत्महननरूपी दुष्कर्म से रोक लिया एवं आश्रम में ले गये। आधीराततक तो मैं किसी प्रकार विलाप करता हुआ आश्रम में पड़ा रहा; पर ज्यों ही मेरे समीपवर्ती लोग सो गये, त्यों ही मैं कान्ता के वियोग में विलाप करता हुआ आश्रम को त्याग कर निर्जन वन की ओर निकल पड़ा। लेकिन वे

मुझे फिर पकड़ लाये और आश्रम में लाकर फटकारते हुए उन्होंने कहा – हे कामिन्! तुमको धिक्कार है, ब्रह्मर्षि होकर तुम स्त्री के लिये इस तरह रोते हो? हम, तुम और संसार के सब प्राणी जो भूमि में उत्पन्न हुए हैं, वे सब मरेंगे। इनके लिये विलाप करने से क्या लाभ? किसी के साथ बहुत दिनतक एकत्र वास नहीं होता। दूसरों की कौन कहे, अपने शरीर का भी अधिक दिनतक साथ नहीं रहता। खोई हुई वस्तु, बीती हुई बात अथवा मरे हुए प्राणी के लिये जो पुरुष सोच करता है वह इस लोक और परलोक में दुःख का पात्र होता है।

आश्रम में आने पर मेरा दुःख कोपरूप में परिणत हो गया और मैंने आँखों के सामने आये हुए सभी सर्पों को मारने की प्रतिज्ञा की।

एक रात्रि को मैं रोता – पीटता फिर निकल कर बहुत दूर चला गया। इधर जब मेरे मित्रों की नींद खुली तो वे मुझे न पाकर बहुत दुःखी हुए और खोजने निकले। खोजते – खोजते किसी प्रकार मेरे समीप पहुँचे और मुझे आश्रम में पकड़ लाये। इसके अनन्तर आश्रम में रहकर सर्पजाति का विनाश करना ही मैंने अपने जीवन का एकमात्र कर्तव्य बना लिया।

उसी दिन से मैं ब्राह्मणवृत्ति का परित्याग कर एक मोटा सा डण्डा ले साँपों की खोज में निकला। मेरे सामने छोटे – बड़े, विषैले, काले, पीले, जैसे भी साँप पड़े वे सब मेरे दण्डप्रहार से काल के गाल में पहुँच गये। इस प्रकार असंख्य सर्पों को मारता हुआ मैं एक दिन चमत्कारपुर के एक सरोवर के समीप जा पहुँचा। वहाँ मुझे एक बूढ़ा, बनैला, सरोवर से निकला हुआ विशाल जल – सर्प दिखायी दिया। उसको देखते ही मैंने मारने के लिये अपना डण्डा सम्हाला।

अपने सिर पर काल को सवार देखकर उस वृद्ध सर्प ने नम्रतापूर्वक कहा कि 'हे ब्राह्मणसत्तम्! मैं यहाँ एकान्त में पड़ा अपना जीवन व्यतीत करता हूँ। न किसी से बोलता हूँ और न किसी को कोई कष्ट ही पहुँचाता हूँ। फिर मुझ निरपराधी बूढ़े को आप क्यों मारते हैं?'

उसने मुझसे बहुत प्रार्थना की, पर मैंने अपना डण्डा उस पर चला ही दिया। डण्डा लगते ही सर्प का शरीर तो न जाने कहाँ चला गया और मुझे अपने सामने सूर्य के समान तेजस्वी एक महापुरुष दिखायी पड़ा। यह घटना देखकर मुझको बड़ा आश्चर्य हुआ और मैं उस पुरुष को प्रणाम कर कहने लगा कि हे महापुरुष! मैंने कोपवश बहुत अनुचित कार्य किया है, कृपया मेरा अपराध क्षमा कीजिये। अब दया करके मुझे यह बतलाइये कि आप कौन हैं और आपने सर्प का शरीर क्यों धारण किया था? किसी के शाप से ऐसा हुआ या यह आपकी एक लीलामात्र थी?

उस महापुरुष ने प्रसन्न मन से गम्भीर वाणी में उत्तर दिया कि हे मुने! मैं आपको अपना पूरा वृत्तान्त सुनाता हूँ। आप ध्यानपूर्वक सुनने की कृपा करें।

इससे पूर्वजन्म में मैं चमत्कारपुर में निवास करता था। ईश्वर की दया से मैं परम तेजस्वी एवं धन – धान्य से समृद्ध था। उसी नगर में सिद्धेश्वर महादेव का विशाल मन्दिर था। एक दिन

बड़े उत्साह के साथ उस शिवालय में उत्सव मनाया गया। वहाँ पर नाना प्रकार के बाजे बजते थे, जिनकी ध्वनि से सारा आकाश भर गया था। उस आवाज को सुनकर हजारों शैव तथा अन्य शिवभक्त दूर-दूर से वहाँ आ पहुँचे। उनमें से कुछ केवल एक बार भोजन करते, कुछ सूखे पत्ते चबाकर निर्वाह करते, कुछ केवल जल पीकर रहते, कुछ वायु पीकर ही सन्तुष्ट रहते और कुछ एकदम निराहार रहकर भगवान् शङ्कर का ध्यान किया करते थे।

सब भक्त भगवान् सिद्धेश्वर की वन्दना कर उनके सामने बैठ जाते और अनेक देवर्षियों, ब्रह्मर्षियों तथा राजर्षियों की दया, धर्म, सत्य आदि के उपदेश देनेवाली विविध प्रकार की कथाएँ कहते-सुनते थे। भक्तिपूर्ण हृदयवाले कितने ही साधुजन नृत्य, गान, वादन आदि में मग्न हो जाते। कुछ धनिक लोग दीन, अन्ध और दरिद्रों को धन देकर सन्तुष्ट करते थे।

उस समय जवानी के मद में चूर मैं भी अपने मित्रों के साथ तमाशा देखने की गरज से वहीं जा डटा। मैं अज्ञान से अन्धा हो रहा था। मेरे हृदय में शिव की भक्ति तो थी नहीं; केवल उस उत्सव में विघ्न डालकर आनन्द लूटना चाहता था। अन्त में मैंने जीभ लपलपाते हुए एक बड़े लम्बे भयङ्कर जलसर्प को उठाकर उन लोगों के बीच में फेंक दिया। साँप को देखते ही सब लोग डर के मारे इधर-उधर भाग गये। केवल एक सुप्रभ नामक महान् तपस्वी परमात्मा के ध्यान में निमग्न, समाधि लगाये बैठे रहे। वहाँ वे कमलासन पर विराजमान, अनिन्द्य, अभेद्य, जरा-मरण से अतीत, वेदनाथ महेश्वर के ध्यान में लीन थे। परमानन्द से उनकी आँखों से आँसू बह रहे थे। सारा शरीर रोमाञ्चित हो रहा था। इस स्थिति में उन महामुनि को कहाँ क्या हो रहा है, इसका लेशमात्र भी ज्ञान नहीं रह गया था।

सर्प को और कोई तो मिला नहीं, यही समाधिस्थ मुनि मिले। उसने इनके शरीर को भली-भाँति जकड़ लिया। इसी बीच में सर्वशास्त्रपारङ्गत, परमतपस्वी श्रीवर्धन नामक उनके शिष्य वहाँ आ पहुँचे। पूज्य गुरुदेव के शरीर को सर्प से जकड़ा हुआ और मुझे उनके समीप ही खड़ा देखकर उन्हें बड़ा क्रोध आया। उनकी आँखें लाल हो गयीं, होठ फड़कने लगे और क्रोध के मारे आँखों में आँसू भर आये। वे अत्यन्त कठोर स्वर में कहने लगे - 'यदि मैंने तीव्र तप किया हो, सच्चे हृदय से गुरु की सुश्रूषा की हो और निर्विकल्प-चित्त से भगवान् महेश्वर का ध्यान किया हो तो यह ब्राह्मणाधम इसी समय सर्पयोनि को प्राप्त हो जाय।' उन महातपस्वी का वचन अन्यथा कैसे हो सकता था? शाप देते ही मैं मनुष्य से सर्प बन गया।

कुछ देर बाद सुप्रभ मुनि का ध्यान टूटा। उन्होंने अपने शरीर में लिपटे हुए एक भयङ्कर सर्प को और पास ही सर्प के आकार में मुझे तथा अपने आस-पास भयभीत जन समुदाय को देखा। तुरन्त सब बातें उनकी समझ में आ गयीं। वे मेरी ओर कृपापूर्ण दृष्टि से देखते हुए श्रीवर्धन से बोले, वत्स! तुमने इस दीन ब्राह्मण को शाप देकर तपस्वियों के योग्य कार्य नहीं किया।

जो मान और अपमान को समान समझता है, पत्थर और सोने में भेद नहीं देखता, शत्रु और मित्र को एक-सा मानता है, वही तपस्वी सिद्धपद पा सकता है। तुमने बिना समझे-बूझे इसको शाप दे दिया, अतएव इसके सब अपराध क्षमा करके इसे शाप से मुक्त कर दो।

परम सत्यवादी श्रीवर्धन ने हाथ जोड़कर विनयपूर्वक कहा कि 'हे पूज्यपाद गुरुवर! अज्ञान से अथवा ज्ञान से मेरे मुख से जो कुछ निकल गया वह कभी अन्यथा नहीं हो सकता। इसके लिये आप मुझे क्षमा करें। जब हँसी में भी मेरे मुख से निकले हुए वचन झूठे नहीं हुए हैं तो शाप के निमित्त कहे गये वाक्य कैसे झूठे हो सकते हैं? सूर्यदेव चाहे पूर्व दिशा को त्याग कर पश्चिम दिशा में उदित हो जायँ, अगाध और अनन्त महासागर सूखकर मरुस्थल बन जाय, सुमेरु पर्वत नष्ट हो जाय; पर मेरा वचन मिथ्या नहीं हो सकता। आप मेरी इस धृष्टता को क्षमा करके मुझे अनुगृहीत करें।'

महर्षि सुप्रभ ने कहा कि 'मैं अच्छी तरह जानता हूँ कि तुम्हारे वचन मिथ्या नहीं हो सकते। तुम्हें इस प्रकार उपदेश देना इस समय के लिये नहीं, बल्कि इसलिये है कि भविष्य में कभी तुम्हें ऐसा करने का साहस न हो। गुरु का यह कर्तव्य है कि वह वयस्क शिष्य पर भी सदा शासन करता रहे। तुम तो अभी बालक हो, तुम्हें उपदेश देना तो मेरा परम कर्तव्य है। क्षमा से सब सिद्धियाँ प्राप्त होती हैं। तपस्वियों के लिये तो क्षमा से बढ़कर कोई शस्त्र है ही नहीं। पापी के प्रति भी अपने मन में पाप-बुद्धि नहीं लानी चाहिये। उपकार करनेवाले के प्रति जो सज्जनता प्रकट करता हैं, उसमें क्या विशेषता है? जो मनुष्य अपकार करनेवाले के साथ उपकार करता है, वास्तव में वही साधु है।

इस प्रकार अपने शिष्य को अनेक प्रकार के उपदेश देकर वे ऋषि मुझसे कहने लगे-'हे भाई! तुम्हारी यह दशा देखकर मुझे बड़ा दुःख है। परन्तु अब कोई उपाय नहीं है। इस सत्याश्रित का कथन त्रिकाल में भी अन्यथा नहीं हो सकता। अतः तुमको सर्पयोनि से मुक्त होने के लिये कुछ समय की प्रतीक्षा करनी ही पड़ेगी।'

तब मैंने बड़ी नम्रता के साथ पूछा कि 'हे महाराज! मैं बड़ा अज्ञानी और दीन हूँ। मुझपर कृपाकर बतलाइये कि इस शाप का अन्त कब होगा?'

महर्षि सुप्रभ ने कहा कि 'जो व्यक्ति शिवालय में एक घड़ीभर नृत्य, गीत आदि करता है उसके पुण्य का पारावार नहीं रहता और जो उत्सव में एक घड़ीभर भी विघ्न करता है उसके पाप का ठिकाना नहीं रहता। तुमने इस महोत्सव में विघ्न डालकर घोर पाप किया है, अब केवल बातों से काम नहीं चलेगा। मैं उपाय बताता हूँ, उसके करने से ही इस घोर पातक से छुटकारा मिल सकता है। वह उपाय है शिव-षडक्षर-मन्त्र का जप। शिवजी के '**ॐ नमः शिवाय**' इस षडक्षर-मन्त्र के जप करने से ब्रह्महत्या-जनित पाप से भी मुक्ति मिल जाती है। षडक्षर-मन्त्र

का यदि दस बार जप किया जाय तो एक दिन के सब पाप दूर हो जाते हैं, बीस बार के जप करने से सालभर के पाप नष्ट हो जाते हैं। इसलिये यदि तुम जल में बैठकर इसी मन्त्र का जप करो तो धीरे-धीरे तुम्हारे सब पाप नष्ट हो जायँगे। कुछ दिनों के अनन्तर वत्स नामक एक ब्राह्मण आवेंगे। उनके डण्डे की चोट खाते ही तुम्हें इस योनि से मुक्ति मिल जायगी।'

महर्षि के उपदेश से मैं तभी से इस जलाशय में बैठा भक्तियुक्त चित्त से षडक्षर-मन्त्र का जप किया करता था। आज आपके प्रसाद से मुझे सर्पयोनि से छुटकारा मिल गया। देखिये, मुझे ले जाने को यह देवप्रेषित दिव्य विमान आ रहा है। अब मैं इसी पर बैठकर परमधाम को चला जाऊँगा। आपने मेरा बड़ा उपकार किया है। मुझे बतलाइये कि इस ऋण से मुक्त होने के लिये मैं आपकी क्या सेवा करूँ?

वत्स ने कहा कि यदि आप मेरा कुछ उपकार करना चाहते हैं तो मुझे ऐसा कोई उपाय बतलाइये जिससे मेरा दुःख दूर हो जाय और शत्रु, व्याधि, दरिद्रता, आदि से भी मुझे कभी दुःख न उठाना पड़े।

उस दिव्य पुरुष ने कहा कि 'हे मुने! शिवजी का षडक्षर-मन्त्र प्राणियों के सब अशुभों का हरण करता है। आप उस मन्त्र का यथाशक्ति दिन-रात जप कीजिये। इससे आपकी सभी कामनाएँ पूरी होंगी और आप सब पातकों से मुक्त होकर स्वर्ग, मोक्ष आदि जो कुछ चाहेंगे, सब अनायास ही आपको मिल जायगा। षडक्षर-मन्त्र के जप से दान, तीर्थस्नान, व्रत, तप, गयाश्राद्ध और सहस्र गोदान का फल मिल जाता है। अधिक क्या, ब्रह्मज्ञान प्राप्त करनेवाले योगी को जो पद मिलता है, वही पद षडक्षर-मन्त्र का जप करनेवाले को भी मिलता है। इसलिये हे मुने! आप षडक्षर-मन्त्र का जप कीजिये। इससे आपकी सब कामनाएँ पूर्ण हो जायँगी और दुःख भी दूर हो जायगा। मैंने आपको यह परमगोप्य मन्त्र बता दिया है। परन्तु हे द्विजवर! यह मन्त्र तभी सिद्ध और फलदायक होगा, जब आप पूर्णरूप से हिंसा का परित्याग कर देंगे। सब वेदों में अहिंसा ही परमधर्म बताया गया है। ब्राह्मण के लिये अहिंसाव्रत का पालन करना परमावश्यक है। अहिंसा को न मानकर जो मनुष्य जीवों का वध करता है, उसे महाप्रलयपर्यन्त घोर नरक में निवास करना पड़ता है। चर और अचर प्राणियों को जो अभय देता है, वही इस लोक में अनेक तरह के सुख भोगकर स्वर्ग को जाता है।'[1]

---

1. **चराचराणां भूतानामभयं यः प्रयच्छति।**
सर्वदा सर्वसौख्याढ्यो जायते दिवि चेह च।।
नास्ति भर्गसमो देवो नास्ति गङ्गासमा नदी।
नास्ति हिंसासमं पापं नास्ति धर्मो दयापरः।। (स्कं. पु. नागरख. 29/220-221)

उस दिव्य पुरुष का वचन सुनकर वत्स ने कहा कि मैंने वृद्धों के मुख से सुना है कि हिंसाजन्य पाप सबको नहीं लगता। राजा लोग वन में असंख्य जीवों को मारते हैं। किन्तु उनको इसका पाप नहीं लगता। वैद्यों ने मांस का भक्षण परम हितकर बताया है, उसके सेवन से शरीर पुष्ट होता और आयुष्य की वृद्धि होती है। हे महामते! मुझे इस विषय में बड़ा सन्देह है। आप इसको दूर कर दीजिये। आप जो कहेंगे, उसे मैं अवश्य मान लूँगा।

उस दिव्य पुरुष ने उत्तर दिया कि यह 'मांसलोलुप महापापियों और दुर्जनों की कपोलकल्पना है। ऐसे निर्दयी पापी लोग शोचनीय हैं। मांस का भक्षण करना तो परमदोषावह है। मांस से न तो आयु की वृद्धि होती और न बल ही बढ़ता है। इसके भक्षण से आरोग्यलाभ भी असम्भव है। मांस के खानेवाले भी अनेक रोगों से पीड़ित, दुर्बल तथा अल्पायु दिखायी देते हैं। इसी प्रकार मांस का परित्याग करनेवाले मनुष्य नीरोग और मोटे – ताजे रहकर पृथ्वी में आनन्द लेते हुए दीखते हैं, उनकी आयु भी बड़ी होती है। अत: मांस के भक्षण से कुछ लाभ नहीं। हाँ, हानि तो अवश्य ही होती है।

'मांस का भक्षण करनेवाला मनुष्य घोर नरक में जाता है। घास, लकड़ी आदि स्थावर पदार्थ से तो मांस मिलता नहीं, प्राणी का शरीर काटने से ही वह मिलता है। जो कष्ट अपने अङ्ग काटने से अपनी आत्मा को होता है, वही कष्ट दूसरे की आत्मा को उसके अङ्गों के काटने से होता है। ऐसा समझकर जीवों की हत्या कभी नहीं करनी चाहिये। केवल उनके सौन्दर्य और उनमें दीखती हुई जगदीश्वर की कारीगरी को देखना और सराहना उचित है। हिंसा करने का पाप केवल एक व्यक्ति को नहीं होता, किन्तु आठ व्यक्तियों को होता है। जीवों को मारनेवाला, अनुमोदन करनेवाला, उसका मांस काटनेवाला, खरीदनेवाला, पकाकर तैयार करनेवाला, परोसनेवाला और भक्षण करनेवाला, ये आठ प्रकार के घातकी होते हैं। ये आठों उस हिंसाजनित पाप के भागी होते हैं। जो व्यक्ति मनसा – वाचा – कर्मणा कभी हिंसा नहीं करता, वह जरा और मरण से रहित परमपद को प्राप्त होता है।[1] जो केवल शाक, मूल और फलों का खानेवाला और ब्रह्मचर्य का पूर्ण रूप से पालन करता हो; किन्तु हिंसा से पृथक् न हो तो उसे किसी प्रकार का फल नहीं मिलता। सैकड़ों वर्ष घोर तप करनेवाले हिंसक मनुष्य से अहिंसाधर्मपालन करनेवाला दयालु पुरुष कहीं अधिक अच्छा है। दयावान् पुरुष जिस किसी वस्तु की इच्छा करता है, वह उसे अवश्य मिल जाती है।'

---

1. **हन्ता चैवानुमन्ता च विशस्ता क्रयविक्रयी। संस्कर्ता चोपहर्ता च खादकश्चाष्टघातकाः।।**
धनेन क्रयकृद्धन्ति भक्षणेन च खादकः। घातको वधबन्धाभ्यामित्येवं त्रिविधो वधः।।
कर्मणा मनसा वाचा यो हिनस्ति न किञ्चन। स प्राप्नोति परं स्थानं जरामरणवर्जितम्।।

(स्कं. पु. नागरख. 29/235 – 237)

इस प्रकार अहिंसामय उपदेश देकर वह दिव्य पुरुष उत्तम विमान पर चढ़ स्वर्गलोक को चला गया। उसके चले जाने पर मेरे मन में निष्कारण इतने सर्पों को मारने का बड़ा पश्चात्ताप हुआ और मैं अनेक प्रकार से विलाप करने लगा। अन्त में मैंने निश्चय किया कि अब मैं हिंसा का सर्वथा परित्याग कर शिवदीक्षा ले महेश्वर की पूजा करूँगा। संसार के जितने भी सुख हैं वे तप से बहुत शीघ्र मिल जाते हैं।

उसी समय मैंने भक्तियुक्त चित्त से शिवजी की दीक्षा ले ली और मौन-धारण कर दिन-रात का सारा समय एक वृक्ष के नीचे बिताता हुआ सब शरीर में भस्म रमाये षडक्षर-मन्त्र का जप करता विचरने लगा। अन्त में सिद्धेश्वर महादेव की शरण में पहुँच अहर्निश उनकी आराधना और षडक्षर-मन्त्र का जप करने लगा।

इस तप के ही प्रभाव से मेरा यौवन सदा के लिये स्थायी हो गया है। मुझे ऐसी सिद्धि प्राप्त हो गयी है कि मैं एक स्थान पर बैठे हुए ही दूसरे लोकों का वृत्तान्त जान सकता हूँ। उसी तप के प्रभाव से मुझमें आकाशमार्ग से आने-जाने की शक्ति भी आ गयी है।

इस प्रकार सूतजी के प्रश्नों का उत्तर देकर वत्सजी लोक-लोकान्तर में भ्रमण करते हुए तथा जीवन का अनुत्तम आनन्द लेते हुए अन्त में शिवलोक को चले गये।

(उपर्युक्त लेख गीताप्रेस, गोरखपुर द्वारा प्रकाशित कल्याण के स्कंदपुराणांक के नागरखं. के अध्याय 29 तथा शिवांक पृ. 390-395 पर आधारित है।)

❀❀❀❀❀❀

मृत्यु के समय प्राणियों का जैसा भाव रहता है, वे वैसे ही जीव के रूप में उत्पन्न होते हैं। उनका शरीर, पराक्रम, गुण और स्वरूप-सब उसी तरह के होते हैं। वे भावस्वरूप होकर ही जन्म लेते हैं।

मरणो यादृशो भावः प्राणिनां परिजायते।।
तादृशाः स्युस्तु सत्त्वास्ते तद्रूपास्तत्पराक्रमाः।
तद्गुणास्तत्स्वरूपाश्च भावभूता भवन्ति हि।।

(पद्ममहापु. भूमिखण्ड 123/46-47, संक्षिप्त पद्मपुराण, गीताप्रेस, पृ. 329 से उद्धृत)